अति से क्षति

नई जमात के संवैधानिक पदभार सम्हालने के क्रम में सबसे पहले अहंकार मुक्त होकर यह आश्वासन देना होता है कि सरकार प्रतिशोध की भावना से काम नहीं करेगी, लेकिन आम आदमी पार्टी (आप) का लगभग प्रत्येक स्वर आत्म-मुग्ध अहंकार और प्रतिशोधी मिजाज को परिलक्षित कर रहा है। यह कहते हुए भी, गहरे आत्म-विश्वास और अहंकार के चरित्र का अंतर साफ है। प्रसंगवश, आपातकाल के बाद हुए चुनाव के बाद जनता पार्टी की सरकार बनी। अभी इसका विवेचन किया जाना चाहिए कि जनता पार्टी की सरकार को चौधरी चरण सिंह के प्रतिशोधी रुख के कारण कितनी क्षति पहुँची। एक ओर तो चौधरी चरण सिंह के मन में इंदिरा गाँधी से प्रतिशोध की तीव्र बेचैनी के कारण जनता पार्टी की सरकार प्राणांतक मुसीबत में फँसी तो दूसरी ओर यही चौधरी चरण सिंह उसी इंदिरा गाँधी के समर्थन से सरकार बनाने की हड़बड़ी से खुद को बचा नहीं पाये। एक तरह की मिथ्या उम्मीद रही होगी कि एक बार सरकार बना लेने पर जनता पार्टी के सभी सासंद उनके समर्थन में आ जायेंगे और उनकी सरकार मजे में चलती रहेगी। आंतरिक आपातकाल का पूरजोर विरोध किया ही जाना चाहिए था, लेकिन आज यह भी सोचने की जरूरत है कि उस आंतरिक आपातकाल का विरोध करते हुए हम उस सीमा तक चले गये जिसके बाद आज के पतन की पटकथा लिखी जाने लगी। यह सच है कि काँग्रेस को भ्रष्टाचार से कोई परहेज नहीं रहा है, और यह भी उतना ही सच है कि काँग्रेस विरोध का भी भ्रष्टाचार से कोई परहेज नहीं रहा है। यह नहीं भूलना चाहिए कि आंतरिक आपातकाल के विरोध के पहले की काँग्रेस विरोध की राजनीति पर भी भ्रष्टाचार का कोई बड़ा आरोप नहीं था। भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए इस बात को बहुत ही गंभीरता के साथ समझना होगा कि मौजूदा जनतंत्र पूँजीवाद की आंतरिक जरूरतों से बंधा हुआ है। पूँजीवाद और जनतंत्र के अंतर्विरोध से भ्रष्टाचार और हिंसा दोनों का गहरा संबंध है। असल में पूँजीवाद और जनतंत्र के संबंधों में बुनियादी गड़बड़ी के साथ हिंसा और भ्रष्टाचार के नाभि-नाल संबंध की अनदेखी नहीं की जा सकती। हिंसा और भ्रष्टाचार से लड़नेवाले के लिए जनतंत्र से अपना रिश्ता और पूँजीवाद के प्रति अपना रवैया जरूर साफ करना होगा। आम आदमी पार्टी (आप) ने जनतंत्र से प्राप्त होनेवाली शक्ति से अपना रिश्ता बनाने में स्वागत योग्य कामयाबी तो हासिल कर ली है, लेकिन पूँजीवाद के प्रति अपना रवैया साफ नहीं किया है। ध्यान में रखना ही होगा कि किसी पूँजीपति से टकराना किसी भी रूप में पूँजीवाद का विकल्प खड़ा करने की कोशिश नहीं होता है। यह और बात है कि पूँजीवाद का विकल्प खड़ा करने की कोशिश में पूँजीपति से टकराव हो सकता है लेकिन हड़बड़ी में बिना वैचारिक, समाजिक, राजनीतिक, सांगठनिक आधार सुदृढ़ किये पूँजीपति से टकराव अंततः पूँजीवाद को ही निर्विकल्प बनाकर प्रस्तुत करता है।

भारतीय संस्कृति ने अपनी उठान के प्रथम सोपान पर ही इस सत्य को महसूस कर लिया था कि अति हमेशा क्षति करती है। महात्ममा बुद्ध ने बहुत ही गहराई से मध्यम-मार्ग के महत्त्व को समझा था और मज्झम-निकाय का प्रस्ताव किया था। किसी-न-किसी रूप में जीवन के सभी प्रसंगों में अति के आग्रह से बचने की स्थाई सलाह दी जाती रही है। इस सलाह के बादजूद

आधुनिकता के बाइनेरी मिजाज में अति को अति-महत्त्व मिलता रहा है। हम अपनी सोच में किसी-न-किसी परम-बिंदू (Absolute Position) पर खड़े होकर ही विचार करते हैं; या तो शून्य है या एक है, या तो काला है या सफेद, या तो शुभ है या अशुभ, या तो अच्छा है या बुरा है, या तो दोस्त है या दुश्मन आदि। बीच की कोई स्थिति यह मिजाज कबूल नहीं करता है; यह मिजाज यह मानने के लिए कहीं से तैयार नहीं होता कि शून्य और एक के बीच में असंख्य संख्याएँ होती हैं, काला और सफेद के बीच में कई रंग होते हैं, अच्छा और बुरा के बीच में कई, शुभ और अशुभ के बीच में कई स्थितियाँ हो सकती हैं, दोस्त और दुश्मन के बीच रिश्तों के कई स्तर होते हैं। ऐसा मिजाज बहुत जोर देकर अपनी क्रांतिकारिता में कहता रहता है कि बीच का कोई रास्ता नहीं होता। केंद्र के महत्त्व से सभी अवगत हैं, केंद्र बीच में ही होता है, बल्कि कहना चाहिए कि बीच ही केंद्र होता है। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि नदियाँ बीच में बहती हैं, संभावनाओं के बीज भी बीच में पलते हैं। हम अपने परिजनों और दोस्तों के बीच में ही रहना पसंद करते हैं। लोगों के बीच में ही प्रिय होना चाहते हैं। हम अक्सर उनके और अपने बीच के संबंध पर सोचते रहते हैं। फिर भी अपनी क्रांतिकारिता में कहते रहते हैं-- बीच का कोई रास्ता नहीं होता! दुनिया के सारे रास्ते बीच में होते हैं। परम-बिंदु पर रहकर विचार तो किया जा सकता है, लेकिन परम बिंदु पर आचार की कोई संभावना नहीं बनती है। यहीं से शुरू होता है विचार और आचार का अंतर। विचार की उच्चता आचार की व्यावहारिकता की कतिपय कठिनाइयों के हवाले से पतनशीलता की वह राह पकड़ लेती है जिसकी कोई सीमा नहीं रह जाती है। आचार का सहयात्री नहीं बन पाने के कारण विचार जड़-सूत्र बनकर रह जाता है। जड़-सूत्र विचार को ढोंग से अधिक कुछ नहीं माना जाता है। विडंबना है, मगर सच है कि अपवादों को छोड़ दें तो समाज विचारकों को ढोंगी मानता है। किताबों के महत्त्व से वाकिफ दुनिया बिचारों की खिल्ली उसे किताबी कहकर उड़ाती है।

विचारों और बुद्धिमत्ता की उच्चता के प्रसंग में हम चाणक्य की बहुत ही प्रशंसा करते हैं। चाणक्य का ही एक और नाम कौटिल्य है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में जो बातें कही हैं, मज्झम-निकाय को प्रस्तावित करनेवाले बौद्ध विरोध और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के संस्थापन-संबर्द्धन में उनकी आत्यंतिक भूमिका पर अलग से विचार करने की जरूरत है। यहाँ तो उनके बारे में प्रचलित एक प्रसंग का उल्लेख करना ही पर्याप्त है। एक बार कोई व्यक्ति चाणक्य से जरूरी विचार-विमर्श के लिए पहुँचा। रात का समय चाणक्य दीया की रौशनी में कोई राजकीय कार्य कर रहे थे। चाणक्य ने जानना चाहा कि विचार-विमर्श का विषय राजकीय है या व्यक्तिगत। जवाब मिला कि विचार-विमर्श का विषय राजकीय नहीं, व्यक्तिगत है। जवाब सुनते ही चाणक्य ने उस दीया को बुझा दिया और दूसरा दीया जलाकर विचार-विमर्श का प्रसंग जानना चाहा। उस व्यक्ति ने अपना प्रसंग छेड़ने के पहले दिया बुझाने-जलाने के रहस्य को जानना चाहा तो उस व्यक्ति को समझाते हुए चाणक्य ने कहा कि पहला दिया राजकीय था जिसकी रौशनी में व्यक्तिगत प्रसंग का विचार-विमर्श भ्रष्टाचार होता इसलिए उसे बुझाकर मैंने इस विचार-विमर्श के लिए अपना निजी दीया जलाया है! सामने बैठा विस्मित! ऐसे चाणक्य के विचारों और बुद्धिमत्ता की उच्चता की प्रशंसा करते-करते, संवैधानिक विचार की उच्चता और भव्यता से लैस रहने के बावजूद अपने आचार में हमारी यह ब्राह्मणवादी-व्यवस्था भ्रष्टाचार के किस दल-दल में फँसती गई है, इसे अलग से कहने की जरूरत नहीं है। अगर-मगर के बावजूद, इस दल-दल से बाहर निकलने की

स्वाभाविक आकांक्षा की अभिव्यक्ति के साथ सामने उपस्थित किसी भी विकल्प को आजमाने के लिए भारत का जन-मन सदा तैयार रहा है। इस आजमाने में वह अक्सर भारी छल का भी शिकार हुआ है। इसके बावजूद, भारत का जन-मन ऐसी आवाज के साथ खड़ा हुआ है। अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व में आम आदमी पार्टी (आप) को मिली चुनावी सफलता इस साथ खड़े होने का एक उदाहरण है। इस बार कोई छल होगा कि नहीं यह तो वक्त बतायेगा, लेकिन जिस तरह की अति पर जाकर अरविंद केजरीवाल और उनके साथी बयान दे रहे हैं वह शंका को सघन ही करता है। किसी भी राज्य विधान सभा में पारित कानून को अपनी संवैधानिक वैधता के लिए भारत संघ से अनुमोदित होना होता है। क्या यह संवैधानिक व्यवस्था वैसी ही है, जैसी अंग्रेजी राज के जमाने में भारत संबंधित कानून को लंदन से अनुमोदित होना होता था? क्या भारत के राज्यों का भारत के साथ वैसा ही संबंध है जैसा संबंध अंग्रेजी राज के जमाने में भारत का संबंध लंदन से था! हालाँकि वोट बटोरने के लिए भी ऐसा बयान किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है और यह तो चुनावी बयान भी नहीं है। बयान तक तो ठीक लेकिन इस मानसिकता के साथ, सकारात्मक काम तो एक तरफ कोई सकारात्मक सोच भी विकसित हो पाना मुश्किल ही है। चुनाव में जीत-हार का चरित्र युद्ध में जीत-हार के चरित्र से भिन्न होता है। जनतंत्र का मूलमंत्र है कि विरोधी या भिन्न विचार का होना दुश्मन होना नहीं होता है।

अण्णा की आना-कानी से एक भिन्न प्रकार की चिंता के संकेत भी मिल रहे हैं। खैर, अभी तो आम आदमी पार्टी (आप) के पास आश्वासन ही आश्वासन है। शीघ्र ही इन आश्वासनों को अमली जामा पहनाने का दौर शुरू होगा और तब नये सिरे से ब्लेम गेम, दोषारोपण, का सिलसिला भी शुरू होगा। आज की भूमंडलीय व्यवस्था के दौर में राजनीति के जिस विराजनीतिकरण की कोशिशें हो रही हैं उसका असर कैसा होगा इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है, फिर भी अनुमान तो अनुमान ही है! बात-बात पर जनता से एसएमएस की माँग की जायेगी, बार-बार लोगों की रायशुमारी की जायेगी और उसे पहले से तय विचारों को पुष्ट किया जायेगा। विवेक और औचित्य से अधिक तथाकथित लोकप्रियता पर जोर दिया जायेगा। दीर्घकालिक हितों की जगह अल्पकालिक आग्रहों पर अधिक जोर दिया जायेगा। दिल्ली तो अभी पूर्ण राज्य भी नहीं है लेकिन उसे संप्रभुत्वसंपन्न राष्ट्र की तरह के आचरण के लिए भारत संघ के विरुद्ध उकसाया जायेगा। 2014के संभावित लोकसभा चुनाव तक यह सब चलता रहेगा।

सार्वजनिक सेवाओं का उपयोग करते हुए विशिष्टजनों का अपना काम करना सचमुच बहुत ही बांछनीय और प्रेरणाप्रद है, लेकिन इससे इसका सर्वजन की सामान्य जीवन-स्थितियों पर कोई खास असर नहीं पड़ता है। आगे आनेवाले दिन उत्सुकता से भरे रहेंगे लेकिन जिस अति पर जाकर आम आदमी पार्टी (आप) के लोग बयान दे रहे हैं उससे क्षति की गहरी आशंका भी है। क्या उम्मीद की जानी चाहिए कि आत्म-मुग्ध अहंकार और प्रतिशोधी मिजाज से मुक्त होकर आम आदमी पार्टी (आप) कोई बेहतर नजीर पेश कर पायेगी। उम्मीद से सभी हैं। तमाम आशंकाओं के बावजूद यह उम्मीद की जानी चाहिए कि कुछ बेहतर होगा। अरविंद केजरीवाल ने अपने कई मंत्रियों के साथ मुख्य मंत्री पद का शपथ ले लिया है और दिल्ली में आम आदमी

पार्टी (आप) की सरकार प्रतिष्ठित हो गई है। इन सब के बीच पीछे छूटता जा रहा है एक जरूरी सवाल कि अब सिविल सोसायटी की दिशा और दशा क्या होगी?